

भविष्य संवारने में वर्तमान भूली कांग्रेस

उ. प्र.-बिहार में जनाधार बनाने या राहुल का कद बढ़ाने की कांग्रेसी तमनाएं धरी रह जाएंगी

जैसे-जैसे चुनाव प्रचार आगे बढ़ रहा है, कांग्रेस अपने उस मकसद में कामयाब होती जा रही है, जो उसने प्रचार अभियान की शुरुआत से पहले अपने लिए निर्धारित किया था। कांग्रेस के दो लक्ष्य थे : पहला, संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार में शामिल क्षेत्रीय सूबेदारों के दबाव से खुद को मुक्त रखना और इस तरह पार्टी के मौजूदा गढ़ों की रक्षा करते हुए कमजोर मुकामों पर कदम जमाने की कोशिश करना; और दूसरा, राहुल गांधी का राजनीतिक कद चुनाव के दौरान इतना बढ़ा देना कि बाद में मनमोहन सिंह की जगह उनकी ताजपोशी में किसी किस्म की दिक्कत न आए, यानी एक तरह का मानस बन जाए कि 'राहुल पीएम इन वेटिंग' हैं।

मौजूदा गठजोड़ मूलक राजनीति का ढांचा कुछ इस तरह का है कि इसमें छोटा-सा नुकसान भी बड़ा साबित होता है। भारतीय जनता पार्टी ने 2004 में जो गलतियां की थीं, उनसे उसका बहुत छोटा-मोटा नुकसान हुआ, पर उसे पांच साल विपक्ष में बैठना पड़ा। इस रणनीति के चलते अगर कांग्रेस ने दस-पंद्रह सीटें भी खो दीं, तो उसका भी वही हश्र हो सकता है। तब उत्तर प्रदेश और बिहार में जनाधार बनाने या राहुल का कद बढ़ाने की कांग्रेसी तमनाएं धरी की धरी रह जाएंगी।

आधी चुनाव प्रक्रिया खत्म हो



चुकी है और अब यह दिखाई देने लगा है कि कांग्रेस कैसे विकेट पर बल्लेबाजी कर रही है। उत्तर प्रदेश और बिहार में स्वतंत्र रूप से अधिक सीटों पर चुनाव लड़ने के कारण उसका वोट प्रतिशत पहले के मुकाबले बढ़ने वाला है। पर प्रेक्षकों को यह भी दिख रहा है कि बिहार में चार फीसदी और उत्तर प्रदेश के बारह फीसदी वोट प्रतिशत को कांग्रेसी सीटों में परिवर्तित करने के स्तर तक नहीं ले जा पाएगी। यानी पार्टी के तौर पर कांग्रेस की इज्जत में इजाफा होगा, पर केंद्र में सरकार बनाने की प्रक्रिया में इससे कोई योगदान नहीं हो पाएगा।

भविष्य पर जोर देने के चक्कर में कांग्रेस यह भूल गई कि 2004 में उसे मिली जीत के पीछे होशियारी से किए गए चुनावी समझौते थे। बिहार और झारखंड में उसके अच्छे परिणाम इसी वजह से निकले थे। यूपीए वैसे तो चुनाव के बाद बना, पर उसकी आधारभूमि पहले ही बन गई थी।



पर कांग्रेस कार्यसमिति के उस प्रस्ताव ने यूपीए को हर हालत में चुनाव बाद का मोरचा ही बना दिया। इससे यह भी पता चलता है कि पांच साल तक गठबंधन सरकार चलाने के बावजूद कांग्रेस अभी तक इस राजनीति के साथ सहज रिश्ता कायम नहीं कर पाई है।

इस नीतिगत भूल के अलावा भी कांग्रेस ने इस चुनाव में कई गलतियां की हैं। दिल्ली में जगदीश टाइलर को दी गई सीबीआई की क्लीन चिट एक ऐसी ही भूल है। इसके परिणामस्वरूप भाजपा को, जो उस समय तक पूरी तरह दौड़ से बाहर थी, होड़ में आने का मौका मिल गया। इसी गलती के कारण पंजाब कांग्रेस को भी दबाव का सामना करना पड़ रहा है, जबकि वहां पर पार्टी काफी अच्छा प्रदर्शन करने की स्थिति में थी। इसी तरह, राजस्थान में चुनाव जीतने के बाद उसके रणनीतिकार अति आत्मविश्वास के शिकार लग रहे हैं। उन्होंने उन ताकतों को फिंरट

कर दिया है, जिनकी वजह से उन्हें भाजपा के ऊपर बढ़त मिली थी।

यह बहुत लंबा चुनाव है। इसके दौरान कोई भी घटना रख पलट सकती है। ऐसी घटनाओं के बारे में पहले से अंदाजा नहीं लगाया जा सकता। पेशबंदी का सबसे मजबूत तरीका यही है कि गठजोड़ों का ढांचा अच्छा बैठाया जाए। अगर कांग्रेस ने उत्तर प्रदेश में गठजोड़ ठीक से किया होता, तो वह भाजपा को स्थानीय स्तर पर होने वाले सांप्रदायिक ध्रुवीकरण का लाभ लेने से रोक सकती थी। पालीभीत, गोरखपुर, बनारस और आजमगढ़ जैसे इलाकों में स्थानीय परिस्थितियों के कारण फैला सांप्रदायिक विद्वेष समाजवादी पार्टी से मुसलमान वोटों के हटने की प्रक्रिया में न बदलता, अगर कांग्रेस और सपा साथ-साथ होते। आज स्थिति यह है कि सांप्रदायिक तनाव वाले इलाकों में मुसलमान वोट बसपा की तरफ खिसक सकता है। उससे तीसरे मोरचे की राजनीति तगड़ी होगी और चुनाव के बाद की स्थिति में गैर-भाजपा और कांग्रेस समर्थक शक्तियां कमजोर होंगी।

कांग्रेस ने इस चुनाव की होड़ में आगे रहने से शुरुआत की थी। कहना न होगा कि वह आज भी थोड़ी आगे ही है। लेकिन उसकी नीतिगत गड़बड़ियों और अति आत्मविश्वास के चलते हुई गलतियों ने भाजपा को यह बढ़त कम करने का मौका दे दिया है।

पहले पेज से जारी...

कम मतदान, दल परेशान

उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के मतदान के ताजा आंकड़े बताते हैं कि यहां भी मतदान का उत्साह-स्तर, उत्तर भारत के अन्य इलाकों जैसा ही नीचा रहा है। बावजूद इसके कि हमारे प्रचार माध्यम पखूपू के वोट डालने की अपीलों से भरे हुए हैं। मोमबत्ती जलाने वाले महानगर मुंबई से मिले मतदान के आंकड़े भी ज्यादा उत्साहजनक नहीं हैं। इसके विपरीत सिक्किम एक अच्छा उदाहरण है और पश्चिम बंगाल या कर्नाटक के लोगों ने वोट डालने में उत्तर भारतीयों



जैसा आलस नहीं दिखाया। वैसे वोट न डालने की वजह के लिए आलस एक काफी हल्का शब्द है। यूं पूरी तरह मतदाताओं को दोष देना भी शायद ठीक नहीं होगा। यह पहले से ही कहा जा रहा है कि इस बार वे मुद्दे ही नहीं हैं, जो मतदाता को उद्वेलित करें।

चुनाव के वक्त मतदाता से सामने जो मुद्दे, मसले, सपने और वायदे परोसे जाते हैं, आखिरकर वे ही तो उसे मतदान केंद्र की तरफ खींच कर ले जाते हैं। जब वोट को लगने लगता है कि उसे किसी बदलाव को लाना है या किसी बदलाव को रोकना है तो ही अक्सर भारी संख्या में मतदान होता है। इसके विपरीत अगर वोट वोट डालने नहीं पहुंचता है तो इसका अर्थ सिर्फ इतना ही है कि उसे किसी अच्छे बदलाव के आगाज का ज्यादा भरोसा नहीं है। इसलिए कम मतदान के पीछे का असली खलनायक शायद राजनीति के तापमान का एक हद से कम होना ही है।

शुरुआत में इस बार ज्यादा मतदान होने की उम्मीद थी। एक वजह यह थी कि इस बार मतदाता सूचियों में भारी संख्या में ऐसे मतदाता जुड़ गए थे, जिन्हें पहली बार वोट डालने का अवसर मिलना था। उम्मीद थी कि वे बड़ी तादाद में मतदान केंद्रों में उमड़ेंगे। उनके उत्साह में कोई कमी न रह जाए, इसके लिए भारी भरकम विज्ञापन अभियान भी चलाए गए थे। लेकिन राजनैतिक दलों की तरह ही ये विज्ञापन अभियान भी उन्हें वोट डालने की प्रेरणा देने में नाकाम रहे।

या यूं कहें कि ये विज्ञापन चुनाव को लेकर युवा वर्ग में वह उत्साह जगाने में नाकाम रहे, जिसका अभाव पूरे समाज में ही दिख रहा है। सकारात्मक बदलाव की संभावना और बेहतरी की उम्मीदें ही लोगों को बड़ी तादाद में मतदान केंद्र की ओर ले जाती हैं, घर से निकल कर वोट डालने का कोरा महिमा मंडन नहीं।

ठग की विधा है भितरघात

चुनाव-चक्रम के चलते इस बार अपन भी चकरा गये. दिनभर में कई बार खबर आती रही कि इंदौर विधानसभा क्षेत्र क्र. दो जैसे भाजपा के गढ़ में जमकर भितरघातियों की चल रही है. चकरा जाना इसलिए भी मुनासिब था कि 25 साल की अपनी शहरी पत्रकारिता में अपन ने पहली बार सुना कि भाजपा में भितरघात चल रही है. ऐसी खबरों में अपन विश्वास नहीं करते, सिर्फ लगे हुए कयास में कुछ अपना कयास जोड़ समझकर पीछे हो जाते हैं और यह भी मान लेते हैं कि राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता में ऐसी खबरें उड़ती हुई और बढ़-चढ़ कर चलती हैं.

बढ़ी-चढ़ी खबरों पर पीछे हटकर देखना ही ठीक रहता है. यूं भी जब तेज गति से कोई चीज चलती है तो बनती हुई तसवीर कुछ धुंधला जाती है. ऐसे में आंखों में फोकस से देखने की जरूरत होती है. भितरघात

का फोकस यदि आप देखें तो बनता हुआ दृश्य खुद परिभाषित करते हुए नजर आता है. वाकई, भितरघात क्या है, अर्थ में यह छिपा हुआ वार है जो अंदर की ओर चोट करता है पर अपना फोकस इसे ठगी की तरह देखता है.

'ठगी' ऐसी विधा है जिसमें आप भले बने रहें लेकिन इतने चतरेपन से अपनी चाल चलें कि हाथ सफाई से नुकसान होने का किसी को पता भी नहीं चले. भितरघात भी यही ठग विधा है, आपकी बारात में शामिल होकर सरे-मंडप से दुल्हन को उठा ले जाने की कला है. इंदौर संसदीय सीट पर कितनी ठगी हुई, यह मैं नहीं जानता. अपन सिर्फ भितरघात को अपने शब्दों से समझाना चाहते हैं.

चुनाव में जब आप भितरघात करते हैं तो

आप अपनी ऐसी पार्टी से ठगी करते हैं जिसकी वजह से आपकी सार्वजनिक जीवटता नजर आती है. उस उम्मीदवार से आप ठगी करते हैं जो आपके भरोसे उस तरह रहता है जैसे बेटे के ब्याह में काम बंटवाने वाले हाथ होते हैं. उस मतदाता से भी आप ठगी करते हैं, जिससे आप अब तक जिस चुनाव चिन्ह के लिए गुहार लगाते रहे, जिसे आप अपने बढ़-चढ़ कर बोले गये शब्दों और बनाए गये मुद्दों के भरोसे अपनी तरफ खींच कर लाते हैं. भितरघात कर ऐसे मतदाताओं का विश्वास भी ठग लिया जाता है.

इसलिए कि भितरघात ठगी से बढ़कर ठगी है क्योंकि इससे आप स्वयं भी ठगे जा रहे हैं. भितरघाती सदैव पहचान लिए जाते हैं. ठग भी पहचान लिया जाता है. पर जब तक

वह पहचाना जाए, वह रफू-चक्कर हो जाता है. फिर भी भितरघाती ऐसा ठग है जो ठगी करके भाग नहीं सकता. वह पहचान तो छिपा जाता है. तब पहचाने और पकड़े गए इस तरह के ठग की सार्वजनिक विश्वसनीयता कमजोर हो जाती है, उसकी जमीन भी तड़क जाती है और बनी हुई शक्ति अस्थिर हो जाती है. वह जितना था उससे कमजोर पड़ जाता है. वह अपने सशक्त विरोध को इस मायने से भी कमजोर कर लेता है. अपने विरोधी को वह यह मौका दे देते हैं कि चुनाव में हार यदि हुई तो वह निष्क्रियता से बच पाए और जीत जाए तो भी वह सब पर भारी पड़ जाए. ऐसे में भितरघात कर विरोध करना अपने साथ ठगी करना भी है. जाहिर है वह स्वयं भी ठगा जाता है. इसलिए यह समझना जरूरी है कि ठग की विधा है भितरघात.

चुनाव-चक्रम

सुरेन्द्र बंसल